DOI: 10.51220/hjssh.v6i1.8

Himalayan J. Soc.Sci. & Humanities Vol- 6 pp.61 - 67, December, 2011, ISSN. 0975 - 9891

हिन्दी के प्रतिष्ठापन में आ रही कठिनाइयाँ एवं समाधान

एस०डी० तिवारी

हिन्दी विभाग, हेमवती नन्दन बहुगुणा गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय परिसर,
पौड़ी गढ़वाल-246001 (उत्तराखण्ड)

Received: 12-11-2011 **Revised: 19-11-2011** **Accepted: 22-12-201**

Abstract

प्रस्तुत शोधपत्र में हिन्दी को राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठापित करने में आ रही विभिन्न कठिनाइयों का विश्लेषण किया गया है साथ ही इन चुनातियों के समाधान हेतु कतिपय सुझाव भी दिये गये हैं।

Key-words: हिन्दी, राजभाषा प्रतिष्ठान, कठिनाइयाँ, समाधान

हिन्दी न केवल राष्ट्रीय, अपितु अन्तर्राष्ट्रीय भाषा भी है। अत: हिन्दी के प्रतिष्ठापन में जहाँ राष्ट्रीय कठिनाइयाँ आ रही हैं वहीं अन्तर्राष्ट्रीय कठिनाइयाँ भी कम नहीं हैं। अत: स्वाभाविक है कि हिन्दी के प्रतिष्ठापन के सम्बन्ध में आने वाली बाधाओं, चुनौतियों एवं कठिनाइयों के समाधान के मार्ग की तलाश और उनके निराकरण के तरीके का उदय भी, उन्हीं के मध्य से करना होगा।

मूलत:, ''भाषा की समस्या प्रमुखत: तीन प्रकार की होती है-शासन और न्याय की भाषा की समस्या, शिक्षा के माध्यम की समस्या, विदेशों से सम्बन्ध की समस्या। इनमें प्रथम के केन्द्रीय, प्रान्तीय या अन्त:-प्रान्तीय तीन रूप हैं-न्याय और शासन के लिए केन्द्र में किस भाषा का प्रयोग हो, प्रान्त या प्रदेश में किसका प्रयोग और एक प्रान्त या प्रदेश से दूसरे के पत्र व्यवहार में किसका प्रयोग हो? शिक्षा की दृष्टि से भी समस्या तीन प्रकार की है-प्रारम्भिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा, विश्व विद्यालयी शिक्षा। विदेशों से सम्बन्ध का अर्थ है, उनसे पत्र-व्यवहार किस भाषा में किया जाये?''[1]

इस समस्या के समाधान हेतु भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343(i) के अनुसार देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी संघ की राजभाषा बनी तथा अनुच्छेद-120, अनुच्छेद-210, तथा अनुच्छेद-343 से 351 तक में राजभाषा नीति, राजभाषा अधिनियम-1963, राजभाषा संकल्प-1968, राजभाषा नियम-1976 के द्वारा राजभाषा नीति के अनुपालन एवं हिन्दी के प्रगामी प्रयोग के विविध दिशा-निर्देश दिये गये हैं, किन्तु ''आज राजभाषा कार्याचयन की स्थिति उतनी सन्तोषजनक नहीं है, यद्यपि हमने काफी उपलब्धियाँ भी हासिल की हैं एवं हमारी सक्रियता को मान्यता भी मिली है, फिर भी, वह समय नहीं आया है कि हम राजभाषा-कार्यान्वयन को लेकर उछल सकें और अपनी सफलता को लेकर सन्तुष्ट हो सकें।''[2]

©SHARAD

मूलत: हिन्दी के प्रतिष्ठापन में निम्नलिखित कठिनाइयाँ स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं:-

1. हिन्दी के प्रयोग में, सिद्धान्त और व्यवहार के स्तर पर कथनी-करनी का अन्तराल।
2. सर्वमान्य राष्ट्रीय चरित्र का संकट, जिसका निर्देश सभी स्वीकार कर लें।
3. हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के पारस्परिक पोषण की बजाय 'साम्राज्यवादी अंग्रेजी' भाषा का बर्चस्व।
4. स्वयं हिन्दी-भाषी-जनों का हिन्दी-प्रयोग से उदासीन होना।
5. राष्ट्रीय सन्दर्भ की अपेक्षा, सभी प्रदेशों का अपनी-अपनी भाषा के प्रति अतिरिक्त मोह होना।
6. राजनीति के चलते 'हिन्दी को थोपे जाने' का हौवा खड़ा करना।
7. हिन्दी की शब्द-सम्पदा की समृद्धि पर प्रश्न-चिह्न लगाकर अनवरत काल तक अंग्रेजी को बनाये रखना आदि।

इसके लिए भी, तीन वर्ग जिम्मेदार हैं-

1. नेतृ वर्ग।
2. अधिकारी वर्ग।
3. जनमानस का वह वर्ग, जिसे लगने लगा है कि उनका बच्चा अंग्रेजी पढ़ने के बाद ही रोजगार प्राप्त कर सकता है।

इसी प्रकार हिन्दी के प्रतिष्ठापन में अन्य स्थितियाँ-परिस्थितियाँ भी उत्तरदायी हैं, जिनमें भावात्मक कठिनाई, संवैधानिक स्थितिजन्य कठिनाई,भाषिक व्यवस्थापन की कठिनाई, न्यायिक क्षेत्र में कठिनाई, संसद-विधानसभाओं में संवादजन्य कठिनाई, अनुवाद सम्बन्धी कठिनाई, शैक्षिक कठिनाई, पारिभाषिक शब्दावली की कठिनाई, हिन्दी की अखिल भारतीय मानकीकरण सम्बन्धी कठिनाई आदि सम्मिलित हैं।

और सब तो ठीक है, पर बड़े दुर्भाग्य की बात है कि जब तथाकथित आभिजात्य वर्ग और हिन्दीतर अन्य भारतीय भाषाओं का बृहत्तर भारतीय भाषाओं के सह-सम्बन्ध की अपेक्षा 'अंग्रेजी' की वकालत करती है कि बिना इस भाषा के देश की एकता खण्डित हो जायेगी। अत: देश को 'एकसूत्र' में बांधने की कड़ी अंग्रेजी ही है। अंग्रेजी से ही, हम ज्ञान-विज्ञान, प्रौद्योगिकी, सूचना-क्रान्ति के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय पहचान बना सकते हैं, अन्यथा देश की वैज्ञानिक प्रगति-उन्नति अवरूद्ध हो जायेगी-आदि-आदि तर्क दिये जाते हैं।

इन 'भोथरे' तर्कों का समाधानिक उत्तर तो यही है कि हम हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के सम्मिलित प्रयास और प्रभाव से प्रशासनिक कार्य-व्यवहार और ज्ञान-विज्ञान की चुनौतियों का, उनकी बद्धमूल नकारात्मक धारणाओं का सकारात्मक दृष्टिकोण से, सृजनात्मक स्तर पर उत्तर दें। लोगों की यह दलील कि अंग्रेजी से ही, हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं के प्रतिष्ठानों की रक्षा हो सकती है, बहुत विचित्र लगता है। यह तो, वही बात है कि हम अपने दूध की रक्षा किसी बिल्ली से करायें, जो हमारी दुग्ध-धवल भाषा एवं संस्कृति, को निगल जाये।

हिन्दी भाषिक दृष्टि से समृद्ध है। अन्य भारतीय भाषाएं भी समृद्ध हैं, पर हमें पिछड़ा हुआ क्यों कहा? और माना जाता है? मूलत: किसी भी भाषा के दो प्रमुख पहलू होते हैं-(1) भाषा का सम्प्रेषणात्मक पक्ष

(2)भाषा का संरचनात्मक पक्ष। ''भाषा के इन दो प्रमुख पहलुओं में, उसका सम्प्रेषणात्मक पक्ष, उसके संरचनात्मक पक्ष से अधिक सशक्त होता है। आज हर कहीं, हर भाषा में इसी पक्ष का बोलबाला है। हिन्दी भी अपवाद नहीं है।''[3]

सम्भवत: हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को 'अंग्रेजी के इसी सम्प्रेषणात्मक' पक्ष से जूझना पड़ रहा है। इतना ही नहीं, राजभाषा हिन्दी को तो और भी नये महत्वपूर्ण भाषिक दायित्वों और अभिव्यक्ति के सर्वथा नवीनतम क्षेत्रों से गुजरना पड़ रहा है। इसका प्रमुख कारण यह रहा कि ''अंग्रेजों के शासन-काल में भारतीय भाषाओं को प्रयोजनमूलक साधन या माध्यम के रूप में विकसित करने का सौभाग्य कभी नहीं मिला। भाषा-शिक्षण का कार्य अधिकतर साहित्य-अभिमुखी ही रहा। परिणामस्वरूप हिन्दी सहित सभी भारतीय भाषाऐं प्रयोजनामूलक शैली के विकास से वंचित रहीं। अंग्रेजी विभिन्न प्रयोजनमूलक कार्यों में प्रयुक्त होकर इस आवश्यकता को पूर्ण कर रही थी। सभी भारतीय भाषाओं के जैसे-हिन्दी-साहित्य और भाषा का शिक्षण तो विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में होता रहा है, किन्तु भाषा के प्रयोजनपरक पहलू की शिक्षा की ओर किसी का ध्यान ही नहीं रहा। इसी कारण साहित्य-शिक्षा प्रदान करने वाले शिक्षकों की संख्या बढ़ती रही और हिन्दी के प्रयोजनमूलक आयामों पर काम करने वालों की संख्या नगण्य रही, क्योंकि हमारे यहां आरम्भ से ही अंग्रेजी का वर्चस्व रहा और वही भाषा साहित्यिक आयाम के साथ-साथ साहित्येतर आयाम के विभिन्न क्षेत्रों में प्रयुक्त होती रही।''[4]

हिन्दी के प्रतिष्ठापन में अंग्रेजी की यह ''सुविधाजनक प्रयुक्ति'' अत्यधिक बाधक रही है। इस दिशा में यू0जी0सी0 द्वारा निर्धारित मानदण्ड बड़े कारगर सिद्ध हो रहे हैं। बी0ए0 एवं एम0ए0 स्तर पर हिन्दी के लिए निर्धारित पाठ्यक्रमों के प्रश्न-पत्रों में एक अखिल भारतीय स्वरूप निखर कर आ रहा है, जो प्रशंसनीय है। प्रयोजनमूलक हिन्दी की संकल्पना भी, इसी सोच का बेहतर परिणाम है।

हमें, यह नहीं भूलना चाहिए कि भाषा एक साधन मात्र है, साध्य नहीं। पर, इसे 'साध्य' के रूप में लिया जा रहा है, यही सोच हिन्दी के प्रतिष्ठापन में बाधक बन रही है। भाषा हमें अन्दरूनी ढंग से जोड़ती है। भाषा ताकत है, एक हथियार है। भूमण्डलीकरण और सूचना-क्रान्ति एवं ज्ञान के विस्फोट की दृष्टि से भी, हिन्दी पीछे नहीं है। नव उदारवादी बाजार को प्रभावित करने में भी हिन्दी अग्रगणी भूमिका निभा रही है। विज्ञापन की दुनिया और बाजार प्रदान करने में भी हिन्दी के हाथ लम्बे हुए हैं। जन-संचार, मीडिया के माध्यम भी हिन्दी की प्रतिष्ठापना में महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। क्रीड़ा, फिल्म, दूरदर्शन ने भी हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा दिये हैं। कम्प्यूटर, इण्टरनेट की दुनिया से भी हिन्दी का व्यापक जुड़ाव हो चुका है। मजूदर वर्ग हिन्दी के प्रयोग का सबसे बड़ा संवाहक बना हुआ है।

हिन्दी को बढ़ावा देने के लिए, जन-मानस को हाथ बढ़ाना है, दैनन्दिन जीवन में अधिकाधिक हिन्दी का प्रयोग करना समय की मांग है। 'हिंगलिश' के अधकचरे प्रयोग से समाज आक्रान्त हो रहा है। अच्छी हिन्दी या अच्छी अंग्रेजी न जानने वाले 'इफ', 'बट', 'बिकाज', 'यू नो' आदि के प्रयोग से अपने को समाज के उस वर्ग में स्थापित करने का भोंडा प्रयास कर रहे हैं जो कभी-कभी हास्यापद स्थिति को उत्पन्न कर

देते हैं। यह अपनी आत्मा को मारने जैसी स्थिति है। यह अनुभूति थोथे गर्व की अनुभूति तो करा सकती है, इतना ही नहीं, अंग्रेजी जानने वालों की जमात में भी नाम शुमार करा सकती है, पर आत्मबल और आत्मसम्मान नहीं दिला सकती।

किन्तु 'दृढ़ इच्छा शक्ति' वाले अधिकारी, कर्मचारी, नेतृवर्ग और सामान्य जन हिन्दी में कार्य करते हुए इस दिशा में सराहनीय कार्य कर रहे हैं। वस्तुत: ''मूल प्रश्न संकल्प की दृढ़ता और राष्ट्र-निष्ठा का है। निजी स्वार्थ के त्याग का है। साहसपूर्ण कदम उठाने का है।''[5]

इस दिशा में कुछ गाथाएँ व मिथक हमें सद्कर्मो के लिए प्रेरित करती हैं। स्वातन्त्रय संघर्ष ऐसा ही प्रेरणा-स्पद व ऐतिहासिक प्रसंग है, जिसमें समस्त भारतवर्ष के नेता, प्रचारक, सन्यासी तथा विद्वानों ने एक स्वर से हिन्दी के बल पर ब्रिटिश सत्ता से संघर्ष कर देश को आजाद कराया। दृढ़ता का एक प्रकरण उद्धरणीय है। 'एशियन कॉन्फ्रेन्स (1947) के दिनों में हिन्दी' की एक घटना है। श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर के शब्दों में-''भारत की स्वतन्त्रता का सूर्योदय होने में थोड़ी देर थी, पर उसका अरूणोदय पूर्ण रूप से क्षितिज पर छा चुका था। पं0 जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में अन्तरिम सरकार बन चुकी थी और अंग्रेजी सरकार व भारत के राजनीतिक दलों के बीच पूर्ण स्वतन्त्रता की बातचीत प्रारम्भ हो गयी थी। उन्हीं दिनों की बात थी, जवाहरलाल नेहरू ने भारत की राजधानी दिल्ली में एशियन कॉन्फ्रेन्स बुलायी। यह एक बड़ी सफलता थी कि स्वतन्त्र न होने पर भी भारत के निमन्त्रण को इतना महत्व मिला कि उसमें एशिया भर के देशों के प्रतिनिधि शामिल हुए। गांधी जी उस एशियन कॉन्फ्रेन्स में बोले, जिसमें बाहर के प्रतिनिधियों में एक भी हिन्दी नहीं जानता था। उनका सबसे पहला वाक्य-समूह था-''मैं स्वदेशी भाषा में आपके सामने बोलता हूँ, तब मेरे जी में यह कहने की ज़रा भी इच्छा नहीं होती कि मैं आप लोगों से माफी माँगता हूँ। ऐसा कहकर मैं आपका अपमान नहीं करना चाहता आप मेरी राष्ट्रभाषा नहीं समझ सकते, परन्तु प्रयत्न कीजिए।''[6]

यह दृढ़ता का अभूतपूर्व उदाहरण है। देश स्वतन्त्र हुआ, हिन्दी राजभाषा घोषित हुई। संवैधानिक व्यवस्थाएं हुई, विभिन्न आदेश पारित हुए, ''लेकिन', 'परन्तु', 'हो सके तो', 'यदि सम्भव हो तो', 'यथा सम्भव' जैसे पदबन्धों के प्रयोग से लदे हुए उन आदेशों का मन्तव्य भी आधा-अधूरा था। इन प्रयोगों ने सभी अधिकारियों/कर्मचारियों को हिन्दी-प्रयोग से बचा लिया।''[7]

सम्प्रति, हिन्दी के प्रचार-प्रसार में मानव संसाधन विकास मन्त्रालय, गृह-मन्त्रालय, रेल मन्त्रालय, विधि मन्त्रालय के साथ ही, सरकारी संगठनों, समितियों, संस्थाओं, परिषदों, विद्यापीठों, विभागों, प्रचार-सभाओं, स्वैच्छिक संगठनों एवं विश्व-हिन्दी-सम्मेलनों, राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों, क्षेत्रीय-प्रान्तीय संगोष्ठियों के माध्यम से हिन्दी की स्थिति के सम्बन्ध मे पर्याप्त चर्चा-परिचर्चा, प्रचार-प्रसार एवं प्रयोग हो रहा है, किन्तु इतना सब होने के बावजूद जब तक ''हिन्दी भाषा की अस्मिता एवं अस्तित्व, राष्ट्रीय अस्मिता एवं अस्तित्व से नहीं जुड़ती, तब तक हिन्दी को द्वन्द्वात्मक मानसिकता से गुजरना पड़ेगा।''[8] ''प्रश्न व्यक्तित्व और अस्मिता का है। यह दु:खद सत्य है कि आज हमारा शासकीय व्यक्तित्व अंग्रेजी से अभिन्न रूप से जुड़ा गया है।

प्रशासकीय भाषा अंग्रेजी है, हिन्दी का केवल नाम लिया जाता है।''[9]

विदेशों में न केवल हिन्दी-प्रेमी, हिन्दी-सेवी और हिन्दी-विद्वानों की त्याग-तपस्या और साहित्य-साधना से हिन्दी का प्रचार-प्रसार और भाषा-साहित्य की समृद्धि हो रही है, अपितु वे लोग तो अन्य विदेशी भाषाओं-फ्रेन्च और अंग्रेजी से संघर्ष लेते हुए, उनके टक्कर का साहित्य भी हिन्दी में उपलब्ध कराने में सतत सन्नद्ध है। हिन्दी का शंख-नाद करने वाले ऐसे विद्वानों को जब भारत के सम्मेलनों में ऐकेडमिक तथ्यों तथा सर्जनात्मक अनुभूतियों को अंग्रेजी में अनूदित करके प्रस्तुत करना पड़ता है, तब उनके ऊपर क्या बीतती है, यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है।

राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने वाले नेता, उच्चायुक्त व राजदूत जब विदेशों में जाते हैं, जो कि प्रायः भारत में भी होता है, तो हिन्दी के स्थान पर अंग्रेजी का प्रयोग करते हैं, इससे विदेशी शासक वर्ग व हिन्दी-प्रेमी-विद्वान् भौचक्के रह जाते हैं। भला, इन नेताओं, उच्चायुक्तों राजदूतों, भारतीय अधिकारियों से पूछा जाये कि विदेशी मंचों पर, हिन्दी में बोलने से उन्हें वहाँ कौन दक्षिण भारत का प्रदेश या अहिन्दी भाषी व्यक्ति रोक रहा है कि हिन्दी में मत बोलो, देश की अखण्डता खण्डित हो जायेगी या अंग्रेजी में ही बोलो, इससे देशी-विदेशी सभी एकसूत्र में बंध जायेंगे। यह सब अपना वर्चस्व और सुविधा बनाये रखने की प्रवृति है, अपने को एक पृथक् प्राणी होने की 'मनोग्रन्थि' का प्रतिफलन है। पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी बाजपेयी जी का हिन्दी में दिया गया 'भाषण' क्या देश में गौरव और सम्मान को बढ़ाने वाला नहीं था? तो फिर क्यों हिचकिचाहट हो रही है अन्य लोगों को? यह निर्विवाद सत्य है-''किसी भी भाषा का सम्मान और रूतबा उसके बोलने वालों के सम्मान और रुतबे पर निर्भर होता है।''[10]

जब देश आजाद हुआ था, तब ''भारत के स्वतन्त्र होते ही, बड़े-बड़े देशों ने भी यह अनुभव किया था कि विश्व के इस बड़े भू-भाग से सम्पर्क करने के लिए उन्हें हिन्दी की आवश्यकता पड़ेगी। फलतः विभिन्न प्रमुख देशों ने अपने विश्वविद्यालयों में हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था और सुविधा की ओर ध्यान दिया। यह सिलसिला कुछ-न-कुछ अब भी जारी है, पर वह ललक अब नहीं रही। जब अंग्रेजी यहाँ स्थायी रूप से जमती दिखायी दे रही हो, तो कोई राष्ट्र अपने युवकों के श्रम और पैसे को हिन्दी के लिए क्या व्यय करेगा? सीधा सवाल उपयोगिता का है। अपने-अपने स्वार्थों के चलते विभिन्न विकसित राष्ट्र अपने यहाँ हिन्दी के पठन-पाठन की व्यवस्था करते हैं। भारत के संवैधानिक और शासकीय स्तर पर हिन्दी की जो स्थिति है, उसमें शैथिल्य है या जो उत्साह है-दोनों की छाया विदेशों के प्रशासकीय तन्त्र से विकसित होने वाली हिन्दी पर पड़ना अस्वाभाविक नहीं है।''[11]

भारतीय एवं विश्व-हिन्दी जन-मानस, संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिन्दी को अधिष्ठित होते हुए, देखना चाहती है, किन्तु ''जिस दिन वहाँ हिन्दी आसीन होगी, तो वहाँ कौन उसका स्वागत करेगा? मैं तभी मानूंगा कि हिन्दी का अन्तर्राष्ट्रीय रूप हो रहा है, जब यह देखने को मिलेगा कि किसी गोरे को हिन्दी बोलते सुनकर हिन्दी-भाषी चौंकेगे नहीं। हम जब अंग्रेजी या फ्रेंच बोलते हैं तब न कोई अंग्रेज, न कोई फ्रेंच चौंकता है,

क्योंकि उन लोगों की दृष्टि में उनकी भाषाएं अन्तर्राष्ट्रीय हैं। हमारा चौंकना इस बात का प्रतीक नहीं है, तो क्या है कि यह विश्वास के परे की बात है कि गोरे भी हिन्दी सीख सकते हैं?''[12]

यह अलग बात है कि संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी का प्रवेश, न होने का कारण राजनीतिक, आर्थिक, एवं कूटनीतिक है। यह निश्चित है कि ''विश्व में भारत की शक्ति और प्रतिष्ठा जिस गति से बढ़ेगी, उसी के साथ उसे अपनी भाषा के माध्यम से अपना व्यक्तित्व प्रकट करना भी उतना ही आवश्यक होगा। इसके साथ ही हमें यह भी प्रयास करना है कि संसार में जो देश या लोग भारत के व्यक्तित्व और उसकी संस्कृति को भली प्रकार समझना चाहते हैं, वे अंग्रेजी के माध्यम से नहीं, बल्कि हिन्दी के माध्यम से समझें।''[13]

भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मन्त्रालय तथा गृह-मन्त्रालय, नई दिल्ली के अप्रैल 2011 के निर्देशानुसार''[14] संघ के राजकीय प्रयोजनों एवं विदेशों में स्थित दूतावासों के हिन्दी में कार्य करने हेतु व्यापक दिशा-निर्देश निर्गत किये गये हैं, जो एक प्रभावी कदम हो सकता है, यदि उसका पालन भी सुनिश्चित कर लिया जाए। मन्त्रालय की ओर से दुभाषिये और अनुवादक की व्यवस्था के निर्देश दिये गये हैं। क्योंकि ''अनुवाद केवल मनोरंजन की वस्तु नहीं है, अपितु आजीविका का एक सशक्त माध्यम भी है।''[15] शिक्षा, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, प्रान्तीय साहित्य को बढ़ावा देने, विज्ञान, संचार-माध्यम, विधि आदि के कार्य प्रभावी तरीके से हिन्दी में सम्पन्न किये जा सकते हैं, किये जा रहे हैं।

कुल मिलाकर कह सकते हैं कि जहाँ हिन्दी का क्षेत्र बढ़ा है, वहीं उसके सम्मुख कठिनाइयां भी बढ़ी हैं, चुनौतियाँ भी खड़ी हुई हैं। इन कठिनाइयों और चुनौतियों के समाधान के लिए कतिपय सुझाव दिये जा रहे हैं-

1. राजभाषा के प्रयोग के मानदण्ड 'क', 'ख', 'ग' क्षेत्रों में विभिक्त हैं। स्वतन्त्रता के साढ़े छः दशक व्यतीत होने वाले हैं। अतः ''(क),(ख) और (ग)'' की नयी परिभाषा और मानदण्ड जरूरी है।''[16]
2. प्रान्तीय भाषाओं एवं अन्य भाषाओं का अनूदित साहित्य और कार्यालयीय पत्राचार-पद्धति को अनुवादित कर हिन्दी में उपलब्ध कराया जाये, ताकि भारतीय भाषाओं का आदान-प्रदान हो सके तथा संशय का वातावरण दूर होकर, उनमें परस्पर सह-सम्बन्ध स्थापित और वर्द्धित हो सके।
3. हिन्दी के साथ दक्षिण भारत या अन्य हिन्दी तर भाषा का अध्ययन प्राइमरी स्तर से दिया जाये। विश्वविद्यालय स्तर पर किसी भारतीय भाषा का अध्ययन अनुवादित साहित्य के रूप में कराया ही जा रहा है। मौलिक ज्ञान हेतु प्रारम्भिक शिक्षा आवश्यक है। इससे रोजगार के अवसर तो प्राप्त होंगे ही, सामाजिक संस्कृति और भाषा का विकास भी होगा।
4. विभिन्न प्रान्तों और केन्द्र की प्रशासनिक और पारिभाषिक शब्दावली की एकरूपता के प्रचलन पर बल दिया जाये, पर हिन्दी में 'तकनीकी' एवं 'पारिभाषिक' शब्दावली समृद्ध नहीं है, का रोना रोने वालों से पूछा जाये कि कितने लोगों ने इनका अध्ययन किया है, या पुस्तकों का दर्शन किया है।
5. अंग्रेजी की अपेक्षा अन्य राज्यों के शब्द-ग्रहण को बढ़ावा दिया जाये। स्वीकृत शब्दों की सूची छोटी-छोटी पुस्तिका के रूप में छात्रों में वितरित की जाये तथा क्षेत्रीय, प्रान्तीय एवं अखिल भारतीय स्तर पर 'शब्द क्विज' प्रतियोगिता का आयोजन कर, उन्हें पुरस्कृत किया जाये। ऐसे लोगों को रोजगार में प्राथमिकता दी

जाय, ताकि किसी स्तर पर भाषा थोपी जाने वाली बात न उठे।

6. अखिल भारतीय सेवा में जाने वालों के लिए हिन्दी के साथ एक हिन्दीतर भाषा तथा हिन्दीतर भाषी के लिए हिन्दी की अनिवार्यता रखी जाये।
7. शीर्ष पदों पर अधिष्ठित नेतृवर्ग, अधिकारी वर्ग, दूतावासों के राजदूतों को केवल राजनीतिक-कूटनीतिक ज्ञान ही नहीं, हिन्दी में संवाद की योग्यता आवश्यक की जाये।
8. अच्छी हिन्दी जानने वाले भी, 'सुविधावश' अंग्रेजी में लिखते-बोलते हैं। अतः हिन्दी को एक आदत के रूप में लिखने का संकल्प होना आवश्यक है, क्योंकि संकल्प लेने वाला व्यक्ति गर्व का अनुभव करता है, शर्म का नहीं। संकल्प का कोई विकल्प नहीं होता। 'कर्तव्य' की अपेक्षा 'कर्म' पर बल दिया जाये। 'स्वागत' करने की क्षमता विकसित की जाये, 'वेलकम' तो अपने-आप सब करेंगे ही।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 भोलानाथ तिवारी-राजभाषा हिन्दी-पृष्ठ 17-18, प्रभात प्रकाश दिल्ली-प्र0सं0-1982
2. डॉ0 सु0 नागलक्ष्मी-प्रयोजनमूलक हिन्दी-प्रासंगिकता एवं परिदृश्य-पृष्ठ-38, जवाहर पुस्तकालय मथुरा-संस्करण-2003
3. वही-पृष्ठ-7
4. वही-पृष्ठ-23, 24
5. डॉ0 रामचन्द्र तिवारी-हिन्दी का गद्य-साहित्य-राष्ट्रभाषा का प्रश्न समस्या और समाधान-पृष्ठ-599, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी-1968
6. श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'-'एशियन कॉन्फ्रेन्स के दिनों में हिन्दी'-प्रथम विश्व हिन्दी-सम्मेलन-पृष्ठ-17
7. डॉ0 शंकर 'क्षेम'-हिन्दी कार्मिकी-पृष्ठ-31, प्रकाश बुक डिपो, बरेली-1997
8. डॉ0 श्यामधर तिवारी-लेख (विदेशों में हिन्दी की स्थिति, दशा एवं दिशा)-मॉरिशस में हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास-पृष्ठ-353, दिल्ली-1997
9. श्रीमती कमला रत्नम-हिन्दी स्वभाषाः विश्व भाषा-प्र0वि0हि0 सम्मेलन-पृष्ठ-17
10. वही-पृष्ठ-128
11. डॉ0 प्रेम स्वरूप गुप्त-विदेशों में हिन्दी-प्रचार-प्रसार और स्थिति के कुछ पहलू-तृ0वि0हि0 सम्मेलन-पृष्ठ-180-181
12. श्री सोमदत्त बखोरी-एक मॉरिशसवासी की हिन्दी-यात्रा-पृष्ठ-176, नई दिल्ली-1984
13. श्री विद्याचरण शुक्ल-अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिन्दी-द्वि0वि0हि0 सम्मे0-पृष्ठ-आमुख।
14. भारत सरकार मानव संसाधन विकास मंत्रालय, राजभाषा प्रभाग, नई दिल्ली-अप्रैल, 2011
15. डॉ0 दिनेश चमोला-अनुवाद और अनुप्रयोग-पृष्ठ-12, अदिश प्रकाशन, देहरादून-2006
16. श्री शशि नारायण स्वाधीन-हिन्दी-पत्रकारिता और राजभाषा विमर्श-पृष्ठ-18, प्रथम संस्करण-नई दिल्ली-2006